# गांधी का परिवर्तनवादी परिपेक्ष्य

डॉ. शकील हुसैन
https://orcid.org/0000-0003-1491-6784

## संक्षेप

गांधी परिवर्तनवादी है किन्तु न तो वह उद्भट दार्शनिक है न उत्कृष्ट चिंतक बल्कि गांधी सर्वोत्कृष्ट और अनुकरणीय राजनीतिक क्रियाविद् है । गांधी किसी "वाद" के पाश से मुक्त हैं । गांधी की परिवर्तनवादी दृष्टि इतिहासवादी नही है । अतः गांधी की शैली बौद्धिक व्यायाम की बजाय कार्यकर्ता की है । उन्होनें बाइबिल और गीता के उपदेशों, रस्किन, थोरो एवं टालस्टाय से जो प्राप्त किया उसे राजनीतिक क्रियाविधि का रूप दिया । वही उनके सिद्धांत है । वे न तो उद्भट दार्शनिक है न चिंतक किन्तु क्रियाविद् के रूप में अतुलनीय हैं । एक आम आदमी द्वन्द्ववाद में निष्णात हुए बिना किस प्रकार व्यवस्था परिवर्तन का हेतु बन सकता है यह गांधी ने विश्व को दिखाया । सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन स्थायी न होकर गतिशील होते हैं, तथा 'विचार' एवं 'क्रिया' केवल इसके साधन मात्र है । यह तत्व मार्क्सवाद की बजाए गांधीवाद में प्रमुखतः व्याप्त है । इसलिए लोहिया मार्क्स की तुलना में गांधी के अधिक निकट है।

प्रमुख शब्दावली : आर्थिक पद्धति, इतिहास चक्र समाजवाद, , स्वराज, सामाजिक परिवर्न, वर्ग, वर्ण, शोषण, शोषित ।

## समाज की अनैतिहासिक व्याख्या

गांधी ने भी विद्यमान व्यवस्था को समझने और उसकी परेशानियों व व्याधियों का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया । उनका विवरण भी निःसंदेह रूप से देशकाल स्थिति से प्रभावित है । गांधी के सम्मुख सैकड़ों वर्षों की दासता से पीड़ित एक विपन्न और गुलाम देश जिस पर तत्कालीन विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली देश का अत्याचारी शासन था । एक अतुलनीय औपनिवेशिक शक्ति का सामना, उससे संघर्ष कर विजय प्राप्त करने के लिए जनता को तैयार करने का दायित्व था, वह भी केवल उच्च नैतिक व अहिंसक साधनों से । गांधी विद्यमान व्यवस्था मे आमूल चूल परिवर्तन नही चाहते थे , उनकी दृष्टि सुधारात्मक है । । उन्होने विद्यमान व्यवस्था को समझने और व्याख्यायित करने की कोशिश की जिससे परिवर्तन का साध्य और साधन स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा सके ।

सहायक प्रध्यापक, राजनीति विज्ञान
शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्वशासी महाविद्यालय , दुर्ग, छत्तीसगढ़ । 8319735275
shakeelvns27@gmail.com

गांधी ने वर्तमान को समझने के लिए इतिहास का सहारा नहीं लिया उनका वर्तमान बोध ऐतिहासिक बोझ से दबा हुआ नहीं है, बल्कि वह वर्तमान को समझने के लिए इतिहासवादी दृष्टि की आलोचना करते हैं । गांधी ने हिंद स्वराज में उन्होंने इसकी कठोर आलोचना की है क्योंकि इतिहास से कुछ सीखना है तो सद्भाव और प्रेम सीखा जा सकता है किंतु हम इससे उलट इतिहास से केवल हिंसा सीखते हैं और इतिहास को इसी रूप में देखते हैं । वह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि–''हमें यह जान लेना होगा कि इतिहास कहते किसे हैं ? इतिहास का शब्दार्थ तो है 'ऐसा हुआ ( इति़हआस) इतिहास का आप यह अर्थ करें तब तो आपको सत्याग्रह के पचासों प्रमाण दिए जा सकते हैं पर अगर शब्द अंग्रेजी का हिस्ट्री है जिसका अर्थ बादशाहों की तवारीख है तो उसमें सत्याग्रह का प्रमाण नहीं मिल सकता । अंग्रेजों में कहावत है कि जिस राष्ट्र की हिस्ट्री नहीं है वह राष्ट्र सुखी है । हिस्ट्री में तो यही मिलेगा कि राजा कैसे खेलते थे कैसे खून कत्ल करते थे और कैसे बैर पालते थे । अगर यही इतिहास हो तो दुनिया कब की डूब गयी होती । ३.. दुनिया में आज भी जो इतने अधिक मनुष्य विद्यमान है यह तथ्य ही हमें यह बताता है कि विश्व का विधान शस्त्रबल पर नहीं बल्कि सत्य दया और आत्मबल पर आधारित है। आत्म बल की सफलता का सबसे बड़ा ऐतिहासिक प्रमाण तो यही है कि इतने युद्धों हंगामों के होते हुए भी दुनिया अब तक कायम है । यह इस बात सबूत है कि युद्धबल की बजाए कोई और बाल उसका आधार है । '' ( गांधी 1910 पृ 87–88)

वस्तुतः गांधी इस तथ्य से सजग थे कि इतिहासवाद सभी प्रकार के सर्वाधिकारवाद की शरण स्थली है । क्योंकि उन्होने देखा कि कालान्तर मे योरोप मे मुसोलिनी और हिटलर ने इटली और जर्मनी में इसी इतिहासवादी दृष्टि का सहारा लेकर कितने अमानवीय अत्याचार किए थे और सर्वाधिक हिंसक राज्यों की स्थापना की थी । जबकि इतिहास में ईसा और राम,कृष्ण जैसे अनेक उदाहरण जो सत्य,अहिंसा और प्रेम पर आधारित है इसलिए गांधी की इतिहासवादी दृष्टि उनकी सत्य अहिंसा प्रेम की दृष्टि पर आधारित है इसलिए वह इतिहास से वैसे नतीजे नहीं निकलते जो कार्ल मार्क्स और लोहिया ने निकाले थे । वह इतिहास को वर्ग संघर्ष की शरण स्थली के रूप में नहीं देखते बल्कि सत्य,प्रेम सद्भाव और सत्याग्रह की प्रेरणा इतिहास से प्राप्त करते हैं।

## सामाजिक वर्ण

गांधी के लिए सामाजिक गतिशीलता का आधार वर्ग और वर्ग संघर्ष नहीं बल्कि मनुष्य की सदभावना प्रेम और अहिंसा की भावना है जो सनातन काल से उसे एक रखती आई है । आज जो विश्व की आबादी है और सभ्यताएं जिस तरह से निरंतरता के रूप में आगे बढ़ी है उससे स्पष्ट होता है कि हिंसा और संघर्ष चाहे वह व्यक्तिगत आधार पर हो चाहे वर्गीय आधार पर सामाजिक गतिशीलता का आधार नहीं रहा है । यदि ऐसा होता तो संपूर्ण विश्व नष्ट हो गया होता महायुद्ध और विश्व युद्धों से भी यही संदेश निकलता है की हिंसा गतिशीलता का आधार नहीं है और न ही वर्ग संघर्ष समाज को कोई गति या दिशा प्रदान कर सकता है । बल्कि प्रेम और

सहिष्णुता ही समाज का आधार स्तंभ रहे हैं । इसलिए गांधी समाज की वर्गीय संरचना में विश्वास नहीं करते । मार्क्स की वर्गीय संरचना का आधार श्रम और पूंजी का सिद्धांत है बहुत हद तक अप्रत्यक्ष रूप से लोहिया भी इससे सहमत दिखाई देते हैं लेकिन गांधी इससे पूर्णतः असहमत है । उनके लिए श्रम जीवन का साधन है । बाइबिल का यह कथन उन्हे प्रिय था कि पसीना बहाने पर ही रोटी मिलेगी । ''ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि इसलिए की कि वह अपनी रोटी के लिए श्रम करे, और कहा जो बिना श्रम किए खाते हैं, वे चोर हैं द्य '' ( यंग इण्डिया 13–10–1921 पृ. 325 गांधी के विचार पृ 202 मे नीहित https://mkgandhi-org )

वह इस बात से सहमत है कि श्रम से ही पूंजी का निर्माण होता है लेकिन वह पूंजी को प्रूधों की भांति चोरी नहीं समझते और न हीं निजी सम्पत्ति के विरोधी है । वस्तुतः पूंजी और श्रम में वे कोई अंतर्विरोध नहीं देखते । गांधीवाद में श्रम एक पवित्र वस्तु है इसलिए श्रम को वह पूंजी के विरुद्ध नहीं देखते उन्हें पूंजी से नहीं बल्कि पूंजीवाद से समस्या है । वे श्रम के महत्व को समझते हैं और इस बात से इनकार नहीं करते कि श्रम और श्रमिकों के स्तर पर कोई मतभेद या विभेद नहीं होता लेकिन वे इसे अपने असहयोग और सत्याग्रह के स स्तर पर ही देखते हैं –

''कर्तव्य यह है कि मैं अपने शरीर से श्रम करूं और तदनुरूप उपचार यह है जो व्यक्ति मुझे मेरे श्रम के फल से वंचित करे, उसके साथ असहयोग करूं । '' ( यंग, 26–3–1931 पृ. 49 ) ( गांधी के विचार पृ 203 मे नीहित) इस प्रकार गांधी के अनुसार श्रम से वर्गों का निर्माण नहीं होता और ना ही वर्ग संघर्ष होता है । लोहिया की भांति गांधी वर्ण को स्वीकार करते हैं । भारतीय वर्ण व्यवस्था में उनका विश्वास था, लेकिन उसे रूप में नहीं जिस रूप में यह आज प्रचलित है अर्थात जातिवादी रूप मे । उनकी दृष्टि से जाति प्रथा और वर्ण व्यवस्था का कोई संबंध नहीं है जाति प्रथा के विकास का कारण छुआछूत है जो की एक गंभीर बुराई है। –''वर्ण का जाति प्रथा से कोई संबंध नहीं वर्ण के नाम पर प्रचलित जाति प्रथा के असुर का नाश कीजिए । वर्ण के इस व्यक्तित्व स्वरूप ने ही भारत का पतन किया है।" (कुनप्पा , 1960 पृ 175)

गांधी वर्ण को प्राकृतिक मानते थे गांधी की दृष्टि में वर्ण स्थाई है क्योकि यह जन्मना आधारित है किंतु यह इस दृष्टि से अस्थाई है कि यह कर्म आधारित भी है अर्थात यदि कोई भी व्यक्ति अपने वर्ण धर्म का पालन नहीं करता है तो वह उसे वर्ण से अलग हो जाता है । गीता के "स्व कर्म ही स्व धर्म है" पर गांधी की गहरी श्रद्धा थी । वर्ण के बारे में वह कहते हैं कि

'' यह मनुष्य की ईजाद की हुई वस्तु नहीं है परंतु प्रकृति का अटल नियम है यह प्रकृति की एक प्रवृत्ति का वर्णन है जो न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियम की भांति हमेशा विद्यमान और सक्रिय है। ( कुनप्पा 1960 पृ 175) गांधी यद्यपि वर्ण धर्म के पारिवारिक कार्य को उचित समझते थे क्योंकि यह आत्म निर्भरता की कुंजी थी और एक आध्यात्मिक संतोष था । किंतु जन्मना आधारित वर्ण में भी उन्हें कार्य के परिवर्तन से कोई समस्या नहीं थी । किसी एक वर्ण का व्यक्ति कोई दूसरा कार्य भी कर सकता था किंतु इस कार्य में कोई लालच या लाभ वृत्ति नहीं होनी चाहिए । इसके वे वैश्विक उदाहरण भी देते हैं । उन्ही के शब्दों में –

'' सिसरो के काल में वकील का धंधा निशुल्क था । किसी बुद्धिमान बढ़ई का वकील बन जाना बिल्कुल ठीक होगा किंतु रुपए के लिए नहीं बल्कि सेवा के लिए । वैद लोग भी समाज की सेवा करते थे और समाज से जो कुछ मिल जाता था उसे संतोष कर लेते थे, परंतु अब वे व्यापारी और समाज के लिए खतरा तक बन गए हैं । मैं अपने पिता का धंधा करूं तो मुझे उसे सीखने के लिए पाठशाला जाने की जरूरत नहीं होती मेरी मानसिक शक्ति आध्यात्मिक प्रयत्न के लिए मुक्त हो जाती है क्योंकि मेरी आजीविका तो निश्चित ही है । '' ( कुनप्पा 1060 पृ 175–76)

इस प्रकार गांधी की सामाजिक व्यवस्था में वर्ग और वर्ण संघर्ष का कारण नहीं बल्कि स्थायित्व का हेतु है । यह सामाजिक संतुलन की स्थापना करते हैं सामाजिक संघर्ष और सामाजिक क्रांति की नहीं । किंतु यह भी उल्लेखनीय है कि गांधी के संपूर्ण सामाजिक राजनीतिक दर्शन में वर्ण पर उनके विचार सर्वाधिक आलोचना आमंत्रित करते रहे हैं । गांधीवाद से बहुत अधिक प्रभावित विद्वान भी वर्ण पर उनके विचारों से पूर्ण सहमति अक्सर स्थापित नहीं कर पाते । वर्ण को स्थाई मानना राजनीतिक दर्शन के किसी भी मानक पर सही मानना कठिन हो जाता है ।

सामाजिक परिवर्तन का आधार प्रक्रियात्मक स्वराज

सभी परिवर्तनवादियों के सम्मुख एक समस्या होती है,सामाजिक स्थिति के प्रति एकअसंतोष होता है जो सामाजिक परिवर्तन का मुख्य औचित्य होता है। लेकिन परिवर्तन का आधार सबके लिए एक नहीं होता किसी के लिए स्थापित सामाजिक प्रणाली को आमूल बदल देना ही सामाजिक परिवर्तन होता है अर्थात समाज में विद्यमान वर्ग और स्तरीकरण संरचना इत्यादि को भंग कर एक वर्ग विहीन, स्तरीकरण विहीन सामाजिक संरचना स्थापित करना ही सामाजिक परिवर्तन होता है, तो किसी के लिएसुधारात्मक उपचारो की सतत प्रक्रिया से सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है ।

गांधी के लिए समाजवादी क्रांति एक अच्छा विचार नहीं था क्योंकि वह हिंसा के किसी भी रूप के विरुद्ध थे 1917 में साम्यवादी क्रांति की उन्होंने आलोचना की थी एंथोनी परेल ने इसके बारे में लिखा है कि –

''मैं जानता हूं कि जहां तक यह हिंसा और ईश्वर को नकारने पर आधारित है, यह मुझे विकर्षित करता है... मैं सबसे अच्छे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी हिंसक तरीकों का कट्टर विरोधी हूं। '' (परेल 1997 70–71)

अतः स्वाभाविक रूप से भारत के समाजवादियों विशेष कर क्रांतिकारी समाजवादियों द्वारा गांधी कि इस बारे में कठोर आलोचना की गई,और बाद में भी उनके समाजवादी विचारों कि यह करके निंदा की गई कि वह सर्वहारा के साथ नहीं बल्कि बुर्जुआ के साथ खड़े हैं ।

'' रवि मिस्त्री ने अपने लेख 'गांधीः द मिथ्स बिहाइंड द महात्मा' में दृढ़ता से कहा है कि ''औद्योगिक श्रमिकों के प्रति गांधी का रवैया पितृसत्तात्मक और कृपालु था'' क्योंकि वह ''स्वयं भारतीय बुर्जुआ के प्रतिनिधि थे।'' ( बानो सदफ mkgandhi-org/articles/Gandhi&the&socialist )

किंतु उनकी आलोचना असंगत है क्योंकि गांधी सामाजिक परिवर्तन के किसी भी क्रांतिकारी उपाय से सहमति नहीं रखते थे उनके दृष्टि में समाज में ऐसी गंभीर व्याधियों नहीं है कि उनको रातों–रात उलट दिया जाए । उनका विश्वास मनुष्य की सद्भावना सहिष्णुता अहिंसा और प्रेम भावना में था इसी के रूप समस्त राजनीतिक अवधारणाओं के बारे में अपने विचार रखते थे । राष्ट्र के बारे में भी उनका यही विचार था कि मैं अपने राष्ट्र से प्रेम करता हूं लेकिन किसी भी दूसरे राष्ट्र की का नुकसान किए बिना । इसलिए उन्होंने कोई समाज की वैकल्पिक प्रणाली का सुझाव प्रस्तुत नहीं किया जो कार्ल मार्क्स और लोहिया के चिंतन में विद्यमान है। उन्होंने कोई वैकल्पिक आर्थिक राजनीतिक प्रणाली नहीं बताई जिसका पालन स्वतंत्र भारत को किया जाना है । उन्होंने एक प्रक्रियात्मक स्वराज बताया जो कोई लक्ष्य नहीं बल्कि एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें आत्म नियंत्रण और सत्याग्रह महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । स्वतंत्र होने का अर्थ यह नहीं है कि राजनीतिक रूप से निष्क्रीय हुआ जाए । वे अपने ही सरकार के ऐसे कार्यों के विरुद्ध सत्याग्रह के लिए तैयार रहने उचित मानते हैं जो जन विरोधी है या जिससे नागरिक सहमत ना हो ।

''स्वशासन का अर्थ है, सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्र होने का निरंतर प्रयास चाहे वह विदेशी सरकार हो या चाहे वह राष्ट्रीय हो'' (अप्पाडोराई, 1969 पृष्ठ 313 )

## निष्कर्ष

गांधी समाजिक परिवर्तन और आर्थिक प्रणाली के किसी स्थायी माडल के पक्ष मे नही थे । क्योकि समाज गतिशील है, तथा यह प्रेम सद्भाव और साहचर्य से चलता है । अतः सुधारात्मक प्रयासो से स्वराज की प्रक्रिया चलती रहनी चाहिए । कोई प्रणाली स्थायी नही हो सकती । गांधी की यह चिंता सही भी साबित हुई ।

भारत में समाजवाद का जो मॉडल अपनाया गया प्रारंभिक सफलता के बाद उसकी परेशानियां सामने आई , और 1990–91 में आर्थिक सुधारो के रूप मे समाजवाद लगभग को पूरी तरह त्यागना पड़ा ।

अंततः इन सब का त्राण गांधीवादी विचारों मे ही मिलता है । वास्तव में 21वीं शताब्दी में गांधीवादी सामाजिक आर्थिक राजनीतिक प्रणाली की प्रासंगिकता और भी अधिक हो गई है क्योंकि गांधी ने किन्ही क्रांतिकारी परिवर्तनों का कोई सुझाव नहीं दिया, उनके लिए सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है , अहिंसक, न्यायपूर्ण व सदभावपूर्ण सामाजिक प्रणाली, आत्म निर्भरता की आर्थिक प्रणाली , और सत्य के प्रति आग्रह युक्त स्वराज वाली राजनीति प्रणाली । राज्यो की बाध्यकारी शक्तियो के विरूद्ध आज की सिविल सोसायटी जिस प्रकार वैश्विक स्तर पर खड़ी रहती है वह गांधीवादी स्वराज प्रणाली ही है । यही कारण है कि गांधी की राजनीतिक कार्यप्रणाली और दर्शन सामाजिक और राजनीतिक दार्शनिकों और विद्वानों को आकर्षित करता रहा है । इसका

मुख्य कारण यह है कि हर देश की स्थिति और उसकी समस्याओं को शांतिपूर्वक हल करने के लिए गांधीजी सबसे उपयुक्त थे।

गांधी अब महाशक्ति हिंसा से खतरे में पड़ी दुनिया के उद्धारकर्ता के रूप में उभर रहे हैं, यहां तक कि गांधी के जीवनकाल में ही दुनिया के महान दिमागों ने उनके काम में एक नई दुनिया का वादा देखा। उनमें से एक हैं रोमेन रोलैंड (1866–1944) जिन्होंने अपनी महात्मा गांधीः द मैन हू बिकम वन विद द यूनिवर्सल बीइंग (1924) में लिखा हैः ''गांधी के साथ सब कुछ स्वाभाविक, विनम्र, सरल, शुद्ध है – जबकि उनके सभी संघर्ष पवित्र हैं धार्मिक शांति से।'' हालाँकि, गांधी का सौम्य धार्मिक स्वभाव, जो उनकी राजनीति में सक्रिय था, 15 साल पहले उनकी पहली जीवनी जोसेफ जे डोके की गांधी, ए पैट्रियट इन साउथ अफ्रीका (1909) में देखा गया था। ( दासगुप्ता 2004)

मार्टिन लूथर किंग (अमेरिका) से लेकर यूरोप में लेक वालेसा तक और नेल्सन मंडेला से लेकर आंग सांग सू की तक, कई राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने गांधी से प्रेरणा ली और अपने राजनीतिक लक्ष्य हासिल किए। दूसरे शब्दों में, गांधीजी के दर्शन की प्रासंगिकता अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका और दक्षिण पूर्व एशिया में हर जगह सिद्ध हो चुकी है।

अतः गांधी की प्रासंगिकता समय की प्रासंगिकता की तरह है, जो सदैव बनी रहती है ।

## संदर्भ

अप्पाडोराई ए. (1969): सामाजिक सिद्धांत में गांधी का योगदान, राजनीति की समीक्षा, जुलाई, 1969 31 नंबर 3 पृष्ठ 312–328- राजनीति की समीक्षा की ओर से नोट्रे डेम डु लैक विश्वविद्यालय के लिए कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस ।- https://www-jstor-org/stable/1406548

बानो सदफ (2004) गांधीः द सोशलिस्ट विद अ डिफरेंस

mkgandhiorg/articles/Gandhi&the&socialist

ब्राउन जे. और परेल ए. (2011)। गांधीजी का कैम्ब्रिज साथी। न्यूयॉर्कः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,

गांधी एम के(1910). हिन्द स्वराज ीजजचेःध्ध्.उाहंदकीप.वतहध्ंतजपबसमेध्हंदकीप–ंदक–चवसपजपबे.ीजउस

दासगुप्ता आर के (2004) : गांधी जी का राजनीतिक दर्शन बानो

mkgandhiorg/articles/Gandhi&the&socialist

कुनप्पा (1960) : मेरा धर्म ( गांधी) नवजीवन प्रकाशन अहमदाबाद ।

नाजरेथ पी ए (2006) : गांधी का उत्कृष्ट नेतृत्व सर्वोदय इंटरनेशनल ट्रस्ट, बैंगलोर।

परेल ए (1997)। हिंद स्वराज और अन्य लेख। पी.279 कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस ।